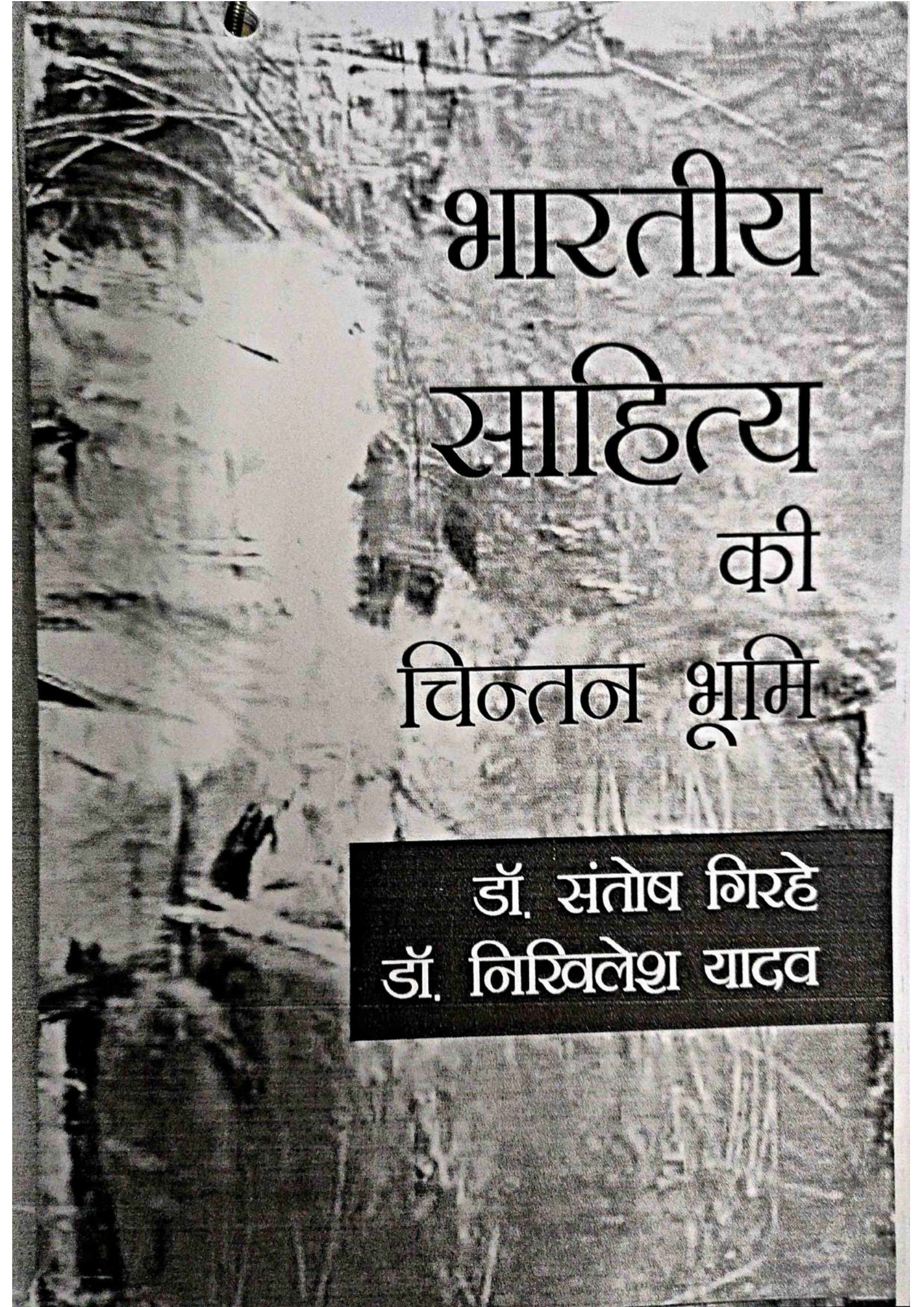

भारतीय साहित्य की चिन्तन भूमि

डॉ. संतोष गिरहे
डॉ. निखिलेश यादव

प्रकृति के रचयिता रवीन्द्रनाथ ठाकुर 286
—डॉ. गीता सिंह

भारतीय साहित्य की विशेषताएँ 290
—डॉ. अमित शुक्ल

भारतीय सांस्कृतिक चेतना की प्रखर प्रवक्ता नीरजा माधव 294
—डॉ. अजय पाण्डेय

भारतीय साहित्य की कालजयी कृतियां : एक अध्ययन 298
—अमलापुरे सूर्यकांत विश्वनाथ

भारतीय साहित्य और जीवन-मूल्य 302
—डॉ. अश्वनी कुमार ध्रुव

भारतीय साहित्य के समक्ष चुनौतियाँ 306
—डॉ. नेहा कल्याणी

भारतीय साहित्य की विशेषताएँ 311
—डॉ. साताप्पा शामराव सावंत

राजनीति के दायरे में पनपती अर्थनीति 315
—प्रत्यूष पी.

'मौनघाटी' : आदिवासी जीवन की दास्तान 319
—रेवती. जी

डॉ. रामकुमार वर्मा का ऐतिहासिक लेखन : 'दीपदान' एकांकी के सर्दर्भ में 323
—डॉ. राजनारायण अवस्थी

भारतीय लोकनाट्य परंपरा 327
—डॉ. सुधा जांगिड़

"मोहन राकेश का कालजयी नाटक-आषाढ़ का एक दिन में चित्रित प्रेम भावना" 333
—प्रा. उत्तमराव येवले

विवेकी राय के निबंध-साहित्य में लोकजीवन और ग्रामीणता 339
—दिव्या वी.एल

ए.आर. पब्लिशिंग कंपनी
1/11829, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
फोन : + 91 9968084132, + 917982072594
arpublishingco11@gmail.com

BHARTIYA SAHITYA KI CHINTAN BHOOMI
Edited by Dr. Santosh Girhe & Dr. Nikhilesh Yadav

ISBN : 978-93-88130-15-8
Criticism

© सम्पादकद्वय एवं लेखकगण

प्रथम संस्करण 2019

मूल्य : ₹ 675

ले-आउट : शेष प्रकाश शुक्ल
मोबाइल : 97-16-54-35-13

इस पुस्तक के किसी भी अंश को किसी भी माध्यम में प्रयोग करने के लिए प्रकाशक से लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है।

कॉम्पैक्ट प्रिंटर, दिल्ली-110 032 में मुद्रित

भारतीय साहित्य के समक्ष चुनौतियाँ

डॉ. नेहा कल्याणी

समकालीन समाज के यथार्थ की सटीक पहचान कर साहित्य की सघन अभिव्यक्ति वही कर सकता है जिसकी दृष्टि तलस्पर्शी हो; क्योंकि रचना या सृजन एक ऐसी योजना है जिसमें समय, समाज, समसामयिक स्थितियाँ, समस्याएँ और संवेदनाएँ एक कडी की तरह काम करती है और सृजन करने वाले रचनाकार के पास संवेदना की गहराई, व्यापक दृष्टि सम्पन्नता, सजग सामाजिक दायित्वबोध, भाषा की सार्वजनिक शक्ति, सृजनात्मक क्षमता एवं अभिव्यक्ति कौशल होना आवश्यक है। सृजन करता हुआ रचनाकार अपनी आस्थाओं, अनुभवों, अनुभूतियों अध्ययन तथा आब्जर्वेशन्स के रचनात्मक तनाव के आधार पर इतिहार व परम्परा की पुर्नरचना करता हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि बिना विजन अथवा दृष्टि के कोई रचना नहीं हो सकती। इस विजन की परख के सम्बन्ध में मुक्तिबोध कहते है कि–" रचनाकार को सामाजिक यर्थाथ के मात्र उसी अंश को ग्रहण करना चाहिये, जो उसे सृजन की बैचेनी पैदा करने की हद तक संवेदित करे। समूचे सूरज अर्थात यथार्थ को आत्मा में उतारने के बजाय यदि उसकी कोई छिटकी हुई किरण भी अपनी सी लगती है तो समझ लीजिये कि इसी किरण में रचना के बीज मौजूद है।" साहित्य मानवीय भावों की रचना का प्रयत्न है- जो हमें बेहतर मनुष्य बनाता है- "भाव परिष्कार करता है और मनुष्यता की उच्च भूमि पर ले जाकर खड़ा करता है। यदि साहित्य हमें क्षुद्र बनाता है, लड़ाता है, भड़काता है, भेद बुद्धि पैदा करता है तो वह साहित्य नहीं प्रचार या प्रोपेगण्डा है।"[1]

कला, साहित्य और संस्कृति किसी जीवन्त और सभ्य समाज का महत्वचूर्ण अंग होते हैं। किसी भी व्यक्ति, समाज और देश की पहचान साहित्यिक और सांस्कृतिक विरासत से होती है, किन्तु वैश्वीकरण के इस युग में यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि साहित्यिक और सांस्कृतिक विरासत का मूल्यांकन कैसे किया जाये?

भारतीय साहित्य इकहरा नहीं है, हिन्दी साहित्य सदैव से ही रूढियों, परम्पराओं भेदवादी प्रवृत्तियों का विरोधी रहा है। जनसंस्कृति और जनधर्म का हिमायती भारतीय साहित्य सदैव से ही सामाजिक परिवर्तनों का आंकाक्षी रहा है। सर्वग्राही उपभोक्तावादी संस्कृति समाज के श्रेष्ठ मूल्यों को लील रही हैं, यह मानवीय संवेदना को नष्ट कर रही है। भुमण्डलीकरण और बाजारवाद की अपसंस्कृति ने आज समाज को त्रसदी में बदल दिया है।

विज्ञान व प्रौद्योगिकी के युग में जीते हुए मानव की सृजनशक्ति आज इतनी बढ गई है कि वह असम्भव को भी सम्भव बना सकता हैं, साथ ही संहार शक्ति के सृजन से विश्व को विनाश की राह पर भी ले जा सकता हैं। सृजन व संहार की इस श्शक्ति ने मानव को इस राह पर खडा कर दिया है कि या तो वह मानव मूल्यों को पूर्णतः अस्वीकार कर सकता है या नए मूल्यों का अन्वेषण।

साहित्य में यह कहा गया है कि अज्ञानता की अपेक्षा अर्द्धज्ञान अधिक हानिकारक है। वर्तमान समय में यही अर्द्धज्ञान सब ओर दिखाई देता है फिर चाहे वह इतिहास, समाज या साहित्य के विषय में ही क्यों ना हो? वास्तव में औद्योगिकीकरण के इस युग में हर ओर लेखक दिखाई देते है, पर प्रश्न यह है कि क्या उनके इस सृजन में वह परिपक्वता, वह दृष्टि है जो रचना को कालजयी और लोकजयी बना सके; क्योंकि लोकहृदय और लोक चिन्ता रचना कर्म की सच्ची पहचान है। क्या वर्तमान समय में लिखा जाने वाला साहित्य भविष्य के हिन्दी पाठकों की जिज्ञासाओं का समाधान कर सकेग? यह प्रश्न विचारणीय और चिन्तनीय है। आज समस्याओं के विषय में तो हर व्यक्ति चिन्तन कर रहा है किन्तु समाधान के विषय में अनभिज्ञ है। आज वैचारिक दरिद्रता की कमी नहीं है किन्तु विवेक बुद्धि और तर्कसंगतता लुप्त दिखाई देती है। साहित्य सदैव ही जनसाधारण की पीडा, सुख-दुख, जय-पराजय और संघर्षों का साक्षी और साथी होता है न साहित्य परिवर्तनों का मूकदर्शक होता है और न ही साहित्यकार। वह तो समाज का सहभागी होता है।

आज यह कम्प्यूटरीकृत संस्कृति जनतंत्र और सामूहिक जीवन और भारत की साझा संस्कृति, जन संघर्षों का इतिहास, सबको धूमिल करने और तिलांजलि देने के लिए तत्पर है। आज के पाठक और युवा के पास इतिहास के नाम पर केवल सुनी सुनाई 'मॉइथलॉजी' और सुनी सुनाई मिथ्या कहानियाँ ही हैं। साहित्य और कला भी दूषित और विषैली हो गई है। वर्तमान युग में भारतीय साहित्य के समक्ष समस्याएँ प्रबल चुनौतियों के रूप में उपस्थित है। उनमें से कुछ चुनौतियों का

विवेचन मेरी अल्प प्रतिभा के आधार पर करने का प्रयास किया गया है-

1. आत्ममंथन का अभाव—वर्तमान युग में चाहे रचनाकार हो पाठक हो या आलोचक सभी को आत्ममंथन की आवश्यकता है किन्तु विडम्बना यह है कि आज हम दूसरों की दृष्टि को महत्व देने के प्रयास में आत्ममंथन को उपेक्षित कर देते हैं। आज के रचनाकार का उद्देश्य आत्मप्रचार और यश प्राप्ति हो गया है, जिससे रचना का मूल उद्देश्य 'समाज से उसका सम्बन्ध' गौण हो गया है। रचनाकार को समझना होगा कि एक कालजयी व लोकजयी रचना का सृजन करने के लिए अपनी रचनाधर्मिता का पहले आत्मविश्लेषण करना आवश्यक है। राजनैतिक व सामाजिक दबावो के बावजूद किसी किस्म का समझौता न करते हुए अपने प्रति ईमानदार रचनाकार ही रचना के साथ न्याय कर सकता है।

2. भाषा की गुणवत्ता—वर्तमान युग में भारतीय भाषायें संक्रमण के दौर से गुजर रही है। यह संक्रमण भाषायी और सांस्कृतिक है। भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा पर आज वैश्वीकरण की तलवार लटक रही है। कविताओं से देशज शब्द और बिंब लुप्त हो गये है। भाषा की गुणवत्ता और प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए व्यवहारिक एवं ठोस निर्णय लेने की आवश्यकता है। वर्तमान युग में साहित्यिक भाषा पूर्णतः व्यवसायिक भाषा में परिवर्तित होती जा रही है। रचनाकार स्वयं क्षेत्रीय भाषाओं से अनभिज्ञ रहता है, परिणामतः रचना में रसवाद, साधारणीकरण एवं ध्यानाकर्षण की क्षमता कैसे संभव हो सकती है?

3. आलोचना दृष्टि—आज साहित्य के विषय पूर्णतया बदल चुके है। आप का साहित्यकार समकालीन समस्याओं, जीवन के अकेलेपन, तकनीक की घुसपैठ, टूटते परिवार आदि विषयों पर लिखता है तो उसके समीक्षा के मापदण्ड भी नये होना आवश्यक है। आलोचना वाद-विवाद से पुष्ट ज्ञान चेतना का नवनीत होती है अतः उसमें नवनीत सी मिठास एवं पौष्टिकता होना आवश्यक है। आलोचक का दायित्व है कि समीक्षा से पूर्व वह स्वयं को बार-बार जाँचे और परखे। आज पाठकवादी आलोचना का जमाना है अतः समीक्षक अपने कर्तव्य से नजरें नहीं चुरा सकता। आज आलोचना केवल लिखी हुई स्थूल भाषा तक सीमित रह गई है। वह साहित्यकार के अनुभव की आँच को महसूस ही नहीं कर पा रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान समय में आलोचना पथ से भटकी, अर्न्तविरोधों से ग्रसित तथा सन्दिग्ध हो गयी है। आज हमारे सामने यक्ष प्रश्न उपस्थित हो गया है कि आलोचना को सृजनात्मकता और संवेदनशीलता से युक्त कैसे बनाया जाये, क्योंकि उसके बिना

इसमें पठनीयता और रोचकता नहीं आ सकती। साथ ही यदि उसमें तार्किकता और वैचारिकता का अदृश्य सम्मिश्रण यदि नहीं जुड़ा तो सम्मोहन की शक्ति के अभाव में वह पाठकों को बाँध कर अपने साथ नहीं रख सकती। आप आलोचना को कवल साहित्यिक विषयों तक सीमित नहीं रहना होगा, बल्कि समय के बुनियादी सवालों से टकराना होगा। समकालीन अवधारणाओं को आलोचनात्मक विवेक के साथ स्वीकारना होगा। संस्कृति के मानचित्र से बेदखल किये गये वर्ग के संघर्ष का हथियार बनना होगा।

उपसंहार—लोक और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध हैं। साहित्य में लोक और समाज के आपसी सम्बन्धों की सही पहचान कवि द्वारा परिष्कृत लोक मानस से ही सम्भव हो सकती है। सामाजिक आधार जीवन की लोकप्रियता, तमाम सहजताएँ साहित्य का स्वीकृत पक्ष है। साहित्यकार अपनी रचना में सामाजिक वैषम्य, आर्थिक समस्या, सांस्कृतिक उथल-पुथल एवं समकालीन अव्यवस्था को कलात्मकता के साथ व्यक्त करके समाज को अपने परिवेश की विसंगतियों के विषय में सोचने के लिए बाध्य कर देता है। लोकजीवन को यथार्थ अभिव्यक्ति देना ही साहित्य की पहली शर्त है।

वर्तमान समय में पाठक की दृष्टि भी सीमित हो गई हैं। साहित्य को समझने की यांत्रिक समझ और परम्परावादी रूढ़ि दृष्टि सीमित संसार में कैद रहकर सुख पाती है। वैश्वीकरण के इस दौर में भारतीय साहित्य के सामने न केवल अपनी अस्मिता बचाने की चुनौती है, बल्कि उपभोक्तावादी संस्कृति से भी उसका सामना है। साहित्य में लोकचेतना के वहन के लिए समाज की स्थिति को अव्यवस्थित करने वाले कारणों को पहचानकर उसके निवारण के लिए कवि आम जनजीवन में एक जागृति लाएँ। वर्तमान युग में साहित्य का संसार एक ओर आज के दैनिक जीवन में व्याप्त त्रासदी को उभारकर क्रमशः कठिन होते हुए भी जीवन संघर्ष को साहित्य का विषय बनाता है, तो दूसरी ओर इस विषमता को परखने की एक कौंध भी प्रदान करता है। यह कौंध सहसा सारे सन्दर्भ को आलोकित करती है। स्थिति से जूझने और सामना करने की प्रेरणा देती है। निष्कर्षतः वर्तमान समय में साहित्य को एक नवजागरण की आवश्यकता है; जो इसे नई ऊर्जा और जीवनी शक्ति प्रदान करे।

सन्दर्भ

1. कृष्ण दत्त पालीवाल, उत्तर आधुनिकता की ओर, पृ. 139

2. साहित्य और हमारा समय—कुँवरपाल सिंह
3. लोकजागरण और हिन्दी साहित्य—सम्पादक रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन
4. समकालीन काव्य में लोकचेतना—डॉ. सत्यनारायण सनेही, प्रकाशन संस्थान
5. एकान्त श्रीवास्तव—बढ़ई, कुम्हार और कवि, किताबघर प्रकाशन

A. R. PUBLISHING CO.

Publishers & Distributors

1/11829 Panchsheel Garden, Naveen Shahdara

Delhi-110032, Mob. 9968084132, 9910947941

e-mail: arpublishingco11@gmail.com